Chapter-6

षष्ठ "अध्याय"

"पारिवारिक परिपेक्ष्य में वैयक्तिक चेतना तथा हिन्दी के प्रमुख साठोत्तर नाटक"

षष्ठ अध्याय - "पारिवारिक जीवन के परिपेक्ष्य में वैयक्तिक चेतना"

---::-

आमुख :-

पूर्ववर्ती अध्याय में ~~राजनैतिक~~ वैयक्तिक-परिपेक्ष्य में वैयक्तिक चेतना का विश्लेषण किया गया । "वैयक्तिक चेतना" ने ~~राजनैतिक~~ वैयक्तिक-पक्ष को किस सीमा तक प्रभावित किया इस पर विस्तृत विवेचन किया गया । प्रस्तुत अध्याय में सामाजिक तथा पारिवारिक क्षेत्र को "वैयक्तिक चेतना" ने किस हद तक प्रभावित किया इस पर प्रकाश डाला जायेगा ।

जैसाकि द्वितीय अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है कि स्वतंत्रता पूर्व विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत में संवैधानिक अधिकारों, आधुनिक शिक्षा प्रणाली तथा अन्य परिस्थितियों ने "वैयक्तिक चेतना" को विस्तृत दायरे में पनपने के अवसर प्रदान किये । और इस तीव्रतर होती वैयक्तिक चेतना ने सामाजिक परम्पराओं तथा पारिवारिक संबंधों को अर्थ व सैक्स के आधार पर प्रभावित किया । अनेक अन्तर्बाह्य परिस्थितियों से यह शनैः शनैः संकीर्णता के घेरे में सिमटने लगी । अहम् तथा स्वार्थता का समावेश होने से सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक मूल्य ह्रासोन्मुख होते गये । फलतः सामाजिक रीति-रिवाज, परम्परागत मूल्यों, सभ्यता, संस्कृति, शिष्टाचार आदि में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा । व्यक्ति सामाजिकता के दायरों से कटकर अपने दायरों को विस्तृत करने में संलग्न हो गया । इस प्रकार समाज-विप्र-समाज क्रिश्चयन समाज, सनातन समाज आदि अनेक छोटे मोटे दायरों में

विभक्त हो गया । सामाजिकता की इस टूटन से परिवार भी प्रभावित हुए बिना न रह सका । व्यक्ति अपने विकास में यदि परिवार को बाधक मानता है तो उसे त्यागने में भी संकोच नहीं करता है । बौद्धिकता से आच्छादित समकालीन परिवेश में ज्यों-ज्यों व्यक्ति की अनुभूतियाँ और संवेदनाएं संकुचित होती गयीं त्यों-त्यों समाज के प्रति उसकी धारणायें बदलती गयीं । "कुलास्यार्थे त्यजेत् एकम् के स्थान पर एकार्थे त्यजेत् कुलम् की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयीं । बौद्धिकता से आच्छादित समकालीन में - कुलस्यार्थे स्थापित होने लगे । आधुनिक समाज में आदर्श व व्यावहारिक चेतना केस्थान पर यथार्थ एवं भौतिक चेतना दृष्टिगोचर हो रही है । समकालीन साहित्यकार भी समाज की अपेक्षा व्यक्ति को महत्व प्रदान कर रहा है, विवेच्य कालीन नाटकों में इसका प्रतिफलन परिलक्षित हो रहा है -

टूटते संयुक्त परिवार :-

सुदीर्घ काल से संयुक्त परिवार सामाजिक प्रतिष्ठा व मर्यादा के प्रतिमान के रूप में माना जाता रहा है । संयुक्त परिवार के अंतर्गत माता-पिता ,चाचा-ताऊ, भाई-बहन, बहू-देवर तथा अन्य संबंधी सम्मिलित होकर रहते हैं । तथा घर का बड़ा बूढ़ा गृहस्वामी होता था और सभी सदस्य आज्ञा का पालन करते हुए अपने अपने कर्तव्य का निर्वाह करते थे किन्तु समकालीन समाज में व्यक्तिवादी भावना के विकसित होने से संयुक्त परिवार की प्रतिष्ठा टूटती जा रही है ।

भाई बहिन के भाव शून्य संबंधों को उद्घाटित किया गया है । आधुनिक परिवेश में दम तोड़ते हुए संयुक्त परिवार का चित्रण नींव की दरार" नाटक में बखूबी किया गया है । आधुनिक परिवार किस प्रकार टूटन, घुटन तथा रिश्तों के खोखलेपन से ग्रस्त होता जा रहा है, यह वस्तुस्थिति प्रस्तुत नाटक में उजागर होती है । शिक्षित पुत्र, स्वतंत्रता की भावना से प्रेरित होकर सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करने की उत्कंठा तथा बौद्धिकता के आधार पर परम्परागत रूढ़ियों से मुक्ति की भावना के कारण परिवार में कलह का वातावरण बना देता है जिससे परिवार में बंटवारे की नौबत उत्पन्न हो जाती है । रेवती सरन शर्मा कृत नाटक "न धर्म न ईमान" में वैवाहिक रूढ़ियों पर प्रश्नचिन्ह तो लगाया ही है, साथ ही संघर्ष की स्थिति में पारिवारिक विघटन को भी चित्रित किया है । नायक दिनेश दूर के संबंध की बहन दया से विवाह करने का इच्छुक है किन्तु दादी द्वारा विरोध किये जाने पर घर त्याग कर चला जाता है ।"[1]

आधुनिक परिवार मनमुटाव तथा बौद्धिकता के कारण भी टूटते जा रहे हैं । यह समस्या शहरी जीवन में विशेषत: झलकती है । 'चारपाई' नाटक में महानगरीय आवास समस्या से खोखले होते हुए संयुक्त परिवार को यथातथ्य उजागर किया है । छोटे से घर में पति-पत्नी ,बच्चे व माता-पिता ठुसे हुए हैं । और परिस्थितियों तथा शहरी समस्याओं ने पारिवारिक मर्यादाओं, कोमल रिश्तों तथा आचरणों को मैला कर दिया है । माँ कुंठित होकर पुत्र और पुत्रवधू को संकेत कर कहती है -

---

1- न धर्म न ईमान - रेवती सरन शर्मा - पृ0-68

"लेटे हैं तो आने-जाने की जगह भी नहीं छोड़ते, शर्म-हया धोकर पी गये हैं।"[1] अन्यत्र बूढ़ा "संयुक्त परिवार" को पुराने पेड़ की संज्ञा देते हुए कहता है -"सारी गड़बड़ उस पेड़ के कारण हुई। कैसे कट गया वो पेड़ ? पुराना हो गया होगा ? गिर गया होगा ? मैं तो उसी की पहचान पर घर में घुस गया। लगा अपना ही घर है।"[2] इस प्रकार वृद्ध के कथनों से विध्वंस होती संयुक्त परिवार की परम्परा का उद्घाटन हुआ है।

आधुनिक शिक्षा व विज्ञान ने भी दो पीढ़ियों के वैचारिक द्वंद्व को तीव्रतर करके संयुक्त परिवार की परम्परा पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। "पीली दोपहर" नाटक में सास रमादेवी वधू रेखा को धार्मिक आडम्बरों को मानने का आग्रह करती है -"यह माने तब ना। उस सुधी का भी दिमाग चल गया है। वह तो खैर पढ़ लिखकर साहब हो गया है, पर आखिर यह तो औरत जात है, इसे तो अपने धर्म, पूजा, व्रत, त्यौहार मानने चाहिये।"[3] समकालीन जीवन की विषमताओं से संघर्षरत तथा महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति कोल्हू के बैल के समान एक ही दायरे में घूम रहा है। उसकी दिनचर्या में परिवार के अन्य सदस्यों, यहां तक कि पत्नी व बच्चों से बात करने तथा उनके दुख-सुख जानने के लिए समय नहीं है। परिवार के भावनात्मक संबंध केवल नाम मात्र को रह गये हैं। "पूर्ण विराम" नाटक में बाह्य रूप से संयुक्त किन्तु भीतर से खोखले हुए परिवार को प्रस्तुत किया है।

1- नटरंग - अंक - पृ0-11

2- नटरंग - अंक - पृ0- 11

3- पीली दोपहर - जगदीश चतुर्वेदी - पृ0-14

भरे-पूरे घर में केवल मात्र नौकर नन्दू ही घर के बुजुर्ग मुखिया चन्द्र प्रकश की देखभाल करता है ,बाकी सभी - तीन पुत्र और दो पुत्र-वधुएं अपनी अपनी दौड़ में भाग रहे हैं । पूरा घर केवल नौकर के सहारे चल रहा है । "बाबू जी, आखिर आपको शिकायत क्या है ? कौन सी व्यवस्था अधूरी है इस घर में ? सब काम देखने के लिए नौकर है । क्या आप यह चाहते हैं कि सब आपके सिरहाने बैठा रहा करें ?"[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित सामाजिक व पारिवारिकजीवन का चित्रण आलोच्य कालीन नाटकों में सूक्ष्म एवं यथार्थ रूप से किया गया है । संयुक्त परिवारों का स्वरूप संकुचित होकर लघु परिवारों के रूप में परिवर्तित हो रहा है, लेकिन वहां भी भावनात्मक संबंध सामूहिक ,एकता, त्याग, सेवा आदि मूल्य प्रभावित हो रहे हैं ।

§2§ वैयक्तिक चेतना से प्रभावित §लघु§ परिवार :-

समकालीन युग में सर्वाधिक समस्या मानवीय संबंधों की है । विश्रृंखलित होते संयुक्त परिवारों ने इस समस्या को और अधिक जठिल बना दिया है । आधुनिक युग में परिवार विघटन की समस्या - नारी की आत्म निर्भरता, आर्थिक विषमता, सेक्स तथा राजनीति की उपज है । आधुनिक परिवेश में संक्रमण की स्थिति से न केवल महा नगरीय परिवार प्रभावित हो रहे हैं अपितु कस्बे और गांवके परिवार भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं । अपने अस्तित्व को खोजता हुआ व्यक्ति नगरीय भीड़ और व्यस्तता में "खोता" जा रहा है । पति-पत्नी,भाई-बहन,

---

1- पूर्ण विराम - वसन्त कुमार परिहार - पृ0-62

पुत्र-पुत्री जीवन की अंधी दौड़ में एक दूसरे से कटते जा रहे हैं । उनमें परस्पर विश्वास, आस्था और त्याग के स्थान पर शंका , स्वार्थ और कटुता आदि की प्रवृत्तियां पनपने लगी हैं जिन्होंने दाम्पत्य जीवन की नींव को हिलाकर परिवार में दरार डाल दी है । आलोच्य कालीन नाटकों में बिखरते परिवारों का चित्रण सर्वाधिक रूप में हुआ है । इस प्रकार के नाटकों में - लहरों के राजहंस आधे-अधूरे (मोहर राकेश), रात-रानी, करफ्यू, व्यक्तिगत, संगुन पंछी (डा० लक्ष्मी नारायण लाल) देवयानी का कहना है ,तीसरा हाथी (रमेश बक्षी) द्रौपदी, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक (सुरेन्द्र वर्मा) बिना दीवारों के घर (मन्नू भण्डारी) छलावा मोहिनी (परितोष गार्गी) नरमेध (गिरीराज किशोर) शायद् हां (शोभा भूटानी) चार यारों की यार (सुशील कुमार) बर्फ की मीनार (विनोद रस्तोगी) नींव की दरारें (कृष्ण किशोर) रूपया तुम्हें खा गया, वसीयत (भगवती चरण वर्मा) टगर (विष्णु प्रभाकर) - आदि नाटक प्रमुख हैं जिनमें संबंधों की मूल्य हीनता तथा खोखलेपन को उद्घाटित किया है ।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन परिस्थितियों से विकसित होते स्व-अस्तित्व व स्वाभिमान के बोध ने पारिवारिक संबंधों में नई दिशाएं नये विचार एवं नये दृष्टिकोण उद्भूत हुए हैं । "बिना दीवारों के घर" की नायिका शोभा स्वाभिमान की रक्षा हेतु अपने मातृत्व व पत्नीत्व का गला घोंट देती है, किन्तु घुट-घुट कर पति के साथ रहना स्वीकार नहीं करती । इसी नाटक में मीना अपने पति जयंत से तलाक लेकर "समाज सेवा" की ओर उन्मुख होती है ।

आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिकता पर आधारित फ्रायडवादी चिन्तन ने स्त्री-पुरूष के आदर्शपूर्ण सम्बन्धों पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए नाटककार को अत्याधुनिक ~~नाटककार ने~~ अनुभूतियों की पहचान करायी है । इसीलिए समकालीन नाटककार ऐसे परिवारों का चित्रण करते हैं जहाँ न पति देवता है और न पत्नी दासी । दोनों के संबंध यथार्थ की कठोर भूमि पर केवलमात्र यौन तृप्ति तक ही सिमट आये हैं । यही कारण है कि मूल्यों व आदर्शों से युक्त दाम्पत्य बन्धन सहज होते जा रहे हैं । दाम्पत्य जीवन में परम्परागत मर्यादा का अन्त और वैयक्तिक स्वतंत्रता का विकास होता जा रहा है । गिरिराज किशोर कृत "नरमेध" में काम कुण्ठित नारी की मनोदशा का वर्णन किया है । "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" नाटक में नपुंसक पति से यौनतृप्ति न मिल पाने पर शीलवती का विद्रोह इन शब्दों में फूट पड़ा है ----" कितनी युवतियाँ हैं, जो ब्याह से पहले ही कुमारी नहीं रहतीं --- और मैं ब्याहता होकर भी ब्रह्मचारिणी थी --- लेकिन कब तक ? ------ मैं एक मामूली स्त्री हूँ । जब शरीर के माध्यम से जीती हूँ तो शरीर की मांगों को कैसे इनकार सकती हूँ ?"[1] इस प्रकार साठोत्तरी नाटकों में मानवीय संवेदना और अनुभूति के बदलते आयामों के साथ साथ पाश्चात्य मनोविज्ञान ने भारतीय समाज एवं परिवार को अत्यधिक प्रभावित किया है । मुद्राराक्षस कृत 'तिलचट्टा' रमेश बक्षी कृत 'वामाचार', आरिगपूडि कृत 'कोई न पराया', सुदर्शन चौपड़ा कृत "अलग पहचान" तथा सुरेशसिन्हा कृत "सादर आपका" आदि नाटकों में स्वच्छंद यौनवृत्ति के प्रति बदलते दृष्टिकोण के कारण टूटते परिवारों का चित्रण किया गया है ।

1- सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक - सुरेन्द्र वर्मा- पृ0-54

सन् 1960 के बाद के हिन्दी नाटक बनते- बिगड़ते मानवीय संबंधों का दस्तावेज है । बौद्धिक चेतना से प्रभावित व्यक्ति चेतना ने मानव के भावनात्मक संबंधों को संवेदना शून्य बना दिया है । फलत: सामाजिक और पारिवारिक अवधारणाओं के प्रति नयी पीढ़ी में अविश्वास और आत्महीनता के बीज अंकुरित हो गये हैं । और पारिवारिक जीवन बिखराव, तनाव व अनिश्चितता की ओर बढ़ता जा रहा है । आधुनिक परिवेश के नाटकों में समाज, परिवार तथा दाम्पत्य जीवनके ह्रासोन्मुख आदर्शों व मूल्यों को अभिव्यक्त कर रहे हैं ।

आधुनिक वातावरण की जटिलताओं ने, विसंगतियों ने पारिवारिक जीवन को विघटनकारी बना दियाहै। माता-पिता के आपसी तनाव व कलह का सन्तान पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है । इसीलिए सन्तान उनकी अपेक्षा कर रही है । "देवयानी का कहना है" की नायिका देवयानी साधन के साथ चुपचाप विवाह कर लेती है । जब उसका पिता लेने आता है तो वह कहती है --

देवयानी (हंस देती है हलके से) "बात यह है कि अगर कोई परेशान है तो साधन है या मैं हूं । मां इसलिए परेशान नहीं है कि 'शी नेवर लव्ड मी'। आप इसलिए परेशान नहीं है कि आपको इस दिन की कल्पना थी ----"।

(गिरिराज किशोर) नरमेध नाटक में टूटते परिवार का चित्रण किया है -"

"इन्द्रराव ---"नीरा जी कभी कभी बहुत थकान लगने लगती है घर का हर व्यक्ति सिमटकर इकाई बन गया है । घोंघों की तरह डरा हुआ । खामोश ।----- (नटरंग अंक संयुक्तांक 15-16पृ0-21)

1- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी - पृ0 29

आधुनिक शिक्षा के प्रसार और पश्चिमी प्रभाव ने दाम्पत्य जीवन को अत्यधिक प्रभावितकिया है । डा० लाल कृत नाटक "व्यक्तिगत" "मैं" और "वह" पात्रों के माध्यम से पति-पत्नी के मनोवैज्ञानिक दबाव, कलह तथा सम्बन्धों की रिक्तता को उदघाटित किया है । "वह" घुटे मन से कहती है -"पत्नी की स्विच पति के हाथ में है , वह जो मूड चाहे बटन दबा दे । ------ सब कुछ यहाँ तुम्हारी ही इच्छा है । तुम्हारा ही स्वार्थ है । तुम कब क्या कर डालो । कब किस वक्त मुझसे क्या माँग बैठो । किस वक्त मुझे क्या बन जाना पड़े ।"[1]

"भौतिक चेतना" से प्रभावित व्यक्ति, आपाधापी,भ्रष्टाचार में लिप्त सब कुछ प्राप्त कर लेने की होड़ में "परिवार संस्थान" को नकार रहा है । "वामाचार" नाटक में "पॉज़िटिव" कहता है - "नोटिस आ गया । इसे आना ही था । उसने चिट्ठी लिखी है कि हमारे बीच का तार टूट गया है, सम्बन्ध मर गया है । अच्छा हुआ कि मर गया । लेकिन मारा है इसे उस हरामजादी ने ।"[2]

पारिवारिक जीवन का मुख्य आधार भाई-बहिन का स्नेह , माता-पिता का वात्सल्य भाव तथा विश्वास और त्याग होता है । किन्तु समकालीन परिवेश में विज्ञान के विकास, औद्योगीकरण के साथ-साथ व्यक्ति की बढ़ती महत्वाकाक्षाओं से असंतोष व्याप्त होता जा रहा है । मँहगाई और बेरोज़गारी ने इस स्थिति को और भी भयावह बना दिया है । मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' नाटक में इस तथ्य को बखूबी उभारा गया है । सावित्री की आत्मनिर्भरता तथा

1- व्यक्तिगत - डा० लाल - पृ०-40 (दृश्य-6)

2- वामाचार - रमेश बक्षी - पृ० 4।

पति की बेकारी ने पति-पत्नी के बीच तनावयुक्त स्थिति को उत्पन्न किया है । बड़ी बेटी बिन्नी अपने मां के प्रेमी के साथ भाग जाती है । लड़का अशोक बेरोज़गार होने के साथ साथ कुंठित है जो फिल्मी पत्रिकाओं तथा अश्लील पुस्तकों में मग्न रहता है । छोटी लड़की किन्नी जिद्दी, मुंहफट तथा भाई की तरह यौन कुंठित है । इस परिवार के सदस्य एक दूसरे के लिए अजनबी हैं । उसके भावनात्मक संबंध जड़ हो चुके हैं । इस परिवार में "ऐसी कुछ चीज़" है जिसने समस्त वातावरण को विषैला बना दिया है । माता-पिता की तानाशाही युक्त प्रवृत्ति तथा स्नेहाभाव ने युवा पीढ़ी को विद्रोही बना दिया है । आज युवा पीढ़ी पहले की तरह आंख मंद कर माता पिता की आज्ञा पालन नहीं करती अपितु बौद्धिक स्तर पर स्वतंत्रता की अपेक्षा रखते हुए परिवार में रहती है । अपनी स्वतंत्रता के लिए कामना करते हुए कहती है । "तीसरा हाथी" में युवा पीढ़ी की प्रतीक विभा कहती है -"अमित । एक अहसास मुझे रह रहकर होता है कि मैं जैसे उग नहीं पा रही हूं । (सामने आकर) लगातार जो पौधे छांह में रहते हैं और जिन्हें सूरज की धूप नहीं मिलती उनकी बाढ़ रूक जाती है, पत्ते पीले हो जाते हैं रंग सांवला जाता है ---।"[1]

"सादर आपका" नाटक में रेखा अपनी मां के व्यवहार से दुखी होकर घर को जेल की संज्ञा देते हुए उससे बाहर निकल खुले में सांस लेने को इच्छुक है ।

पाश्चात्य के अंधानुकरण तथा अति बौद्धिकता ने भी पारिवारिक संबंधों को प्रभावित किया है । समकालीन युग में युवा वर्ग परिवार के

1- तीसरा हाथी - रमेश बक्षी - पृ0- 75

बुजुर्ग सदस्यों के प्रति अवज्ञा व तिरस्कार को "आधुनिकता" का माप दण्ड मान रहा है । "ओह अमेरिका" नाटक में नाटककार दया प्रकाश सिंहा ने श्याम के माध्यम से इसी तथ्य को उजागर किया है । श्याम दो वर्ष विलायत रहकर लौटता है । अपने पिता व देश के प्रति तुच्छ विचार बना लेता है । वह अपने पिता से कहता है -"पॉप- यानि ओल्ड मैन - अपना बुड्ढा , मतलब बाबू जी -----"[1]

आलोच्य कालीन नाटकों में, परिवार में भाई-बहिन के पवित्र स्नेहपूर्ण संबंधों में व्याप्त होती कटुता को स्पष्ट किया गया है । विनोद रस्तोगी कृत "बर्फ की मीनार" में परिवर्तित होते भाई-बहन के संबंधों को चित्रित किया है । सुरेन्द्र वर्मा कृत "द्रौपदी" में भाई-बहन संबंध की गरिमा पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं -"अनिल - जरा इसका पर्स खोल कर देखो । रिट्ज के बौक्स की दो टिकटें हैं, दोपहर के शो की । वही है इसकी किलास - सोशियोलॉजी नहीं, सैक्सोलौजी --"[2]

सुरेश (डांटकर) - अनिल । इतना और पूछ लो कि आज थ्योरी होगी या प्रेक्टिकल । वसन्त कुमार परिहार कृत नाटक "पूर्ण विराम" में भाइयों के परस्पर संबंध केवल "एक बाप" के होने तक ही सीमित हैं । एक दूसरे से बात करने तक का अवकाश उन्हें नहीं और न ही इसकी कोई आवश्यकता समझते हैं । राम बाबू अपने अपाहिज भाई गिरधारी को बोझ समझता है -"अब मैं सबको अपने सिर पर उठाकर तो घूम नहीं सकता ।"[3] इस प्रकार आर्थिक आपाधापी एवं तनावयुक्त परि-स्थितियों में संकुचित होती वैयक्तिक चेतना ने भाई-बहनों, भाई-भाइयों के मधुर संबंधों पर तुषारपात किया है ।

1- ओह अमेरिका - दया प्रकाश सिंहा - पृ0-72

2- द्रौपदी - सुरेन्द्र वर्मा - पृ0 - नटरंग अंक 14 - पृ0-10

3- पूर्ण विराम - वसन्त कुमार परिहार - पृ0- 62

आलोच्य कालीन नाटकों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक भारतीय परिवार विशृंखलित होते जा रहे हैं । मनुष्य की संवेदना, दृष्टिकोण तथा विचारधारा के परिवर्तन ने आदर्श भारतीय परिवारों के मूल्यों, मर्यादाओं को आलोड़ित किया है । समकालीन परिवेश में नई पीढ़ी व पुरानी पीढ़ी के वैचारिक द्वंद्व एवं अलगाव ने पारिवारिक जीवन को कसैला बना दिया है । गत दो दशकों में भौतिकता की ओर उन्मुख "वैयक्तिक चेतना" ने नैतिक मूल्यों में विघटनकारी तथ्य उपस्थित कर दिशाहीनता, संकीर्णता, एकाकीपन आदि दुष्प्रवृत्तियों को उभारा है । फलतः पारिवारिक संबंध जड़ीभूत होते जा रहे हैं । परस्पर प्रेम, दया, श्रद्धा, विश्वास, त्याग आदि के भाव धूमिल होते जा रहे हैं । ऐसे दमघोटू वातावरण में व्यक्ति घर से बाहर निकल सुख-चैन प्राप्त करना चाहता है । उसे जैसा भी, कहीं भी आत्मनीय आग्रह मिलता है तो वह उसी की ओर अग्रसर होता जाता है । उस समय जाति, और वर्ण आदि के बन्धन शिथिल हो जाते हैं । परम्परा और मान्यताओं की लक्ष्मण रेखा मिट जाती है । और व्यक्ति खुले में सांस लेने को उत्सुक हो उठता है । इसी आत्मनीय आग्रह ने परम्परागत विवाह संबंधी चिन्तन को युगानुरूप परिष्कृत किया है । जातिगत भेदभाव को त्याग कर अन्तर्जातीय सम्बन्ध बनाने की ओर आकर्षित किया है । मशीनी युग की आपा धापी में व्यक्ति को इतना व्यस्त कर दिया है कि उसके पास इतना समय नहीं कि वह सामाजिक औपचारिकताओं का निर्वाह कर सके । इन सभी तथ्यों ने विवाह के चिन्तन को प्रभावित किया है ।

§3§ विवाह के प्रति नये चिन्तन नये आयाम :-

पूर्वयुगीन काल से ही विवाह एक सामाजिक एवं धार्मिक कृत्य माना जाता रहा है । परिवार का मुखिया अथवा बड़ा सदस्य अथवा ब्राह्मण व नाई विवाह तय करता था । किन्तु ज्यों ज्यों शिक्षा का विकास होता गया व्यक्ति का चिन्तन बदलने लगा । औद्योगिक विकास के कारण व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होने लगा और नये व्यक्तियों से संबंध स्थापित करने लगा । इस प्रक्रिया में अनायास ही विवाह के प्रति प्राचीन दृष्टिकोण में बदलाव आने लगा । आधुनिक शिक्षा तथा पाश्चात्य प्रभाव से प्रभावित "वैयक्तिक चेतना" के आलोक में व्यक्ति विवाह को व्यक्तिगत कार्य समझने लगा । समयाभाव ने विवाह के स्वरूप मान्यताओं एवं प्रणाली को प्रभावित किया है । आज व्यक्ति बाजे-गाजे से सुसज्जित हो तीन-तीन दिन वधु के घर ठहरने के स्थान पर "कोर्ट मैरिज" अथवा "रजिस्टर्ड मैरिज" करना अधिक उपयुक्त समझता है । कुछ समय पहले तक भारतीय समाज में विधवा विवाह और अन्तर्जातीय विवाह को बुरा समझा जाता था किन्तु शिक्षा व मानवता के आधार पर इस तथ्य को स्वीकार किया जाने लगा । "विधवा विवाह के अतिरिक्त अन्तर्जातीय एवं प्रेम विवाह को समर्थन और स्वीकृति तथा न सुधार पाने की सीमा तक बिगड़े हुए दाम्पत्य रिश्ते में सम्बन्ध विच्छेद और तलाक का अनुमोदन और पुनर्विवाह की सिफारिश आदि मूल चेतना से जुड़े ऐसे तथ्य थे जो समाज की उन्नति के लिए अनिवार्य थे ।"[1]

1- साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में उद्धृत लेख - साठोत्तर नाटक : प्रेम और यौन दृष्टि - काली किंकर - पृ0-87

समकालीन परिवारों में विवाह का स्वरूप युगानुरूप बदल रहा है । शिक्षित एवं स्वतंत्रता प्रिय युवा वर्ग अपना जीवन साथी स्वंय चुनने का अधिकार मांगता है । इस विषय में उसे माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं । वह अपने समकक्ष अपनी पत्नी चाहता है जो प्रत्येक क्षेत्र में उसका साथ दे । और ऐसा न होने पर वह विवाह संस्था को मृत, अनावश्यक अथवा केवल मात्र "पास" कहकर नकार रहा है । "शादी के वल एक पास है जिसको हाथ में रखने से खुले आम घूमने, एक साथ बिस्तर पर सोने और दुर्घटना के समय सामाजिक विरोध न होने का सर्टिफिकेट मिल जाता है ।"[1] आधुनिक परिवेश में शिक्षित युवक-युवतियां प्रेम विवाह की ओर उन्मुख हो रहे हैं । शिक्षा के साथ साथ आर्थिक आत्म निर्भरता ने नारी को स्वच्छंदता प्रदान की है जिसने विवाह को व्यक्तिगत सिद्ध कर दिया है । "पीली दोपहर" नाटक में नर्स मीना अपनी सहकर्मी मिस सूद से कहती है -"अब हम तो हो चुके बेइलाज डार्लिंग । मेरी डैडी ने तो इजाजत दे दी है कि मेरी तरफ से कुयें में गिर या मर, सो मैंने तो अगले महीने में रणजीत से मैरिज कर रही हूं ।-----"[2] आलोच्य कालीन परिवेश में विवाह प्रणाली कई प्रकार के प्रयोगों व तर्क के बीच से गुजर रही है । विवाह का पारिवारिक व सामाजिक संदर्भों में स्वरूप बदलता जा रहा है । विवाह कौटुम्बिक दायरों से सिमट कर संकुचित होते जा रहे हैं । "अत:किम् (राधाकृष्ण सहाय) नाटक में मनोहर अपनी पत्नी रत्ना से कहता है -"सारे खानदान को जुटा कर, सबकी खातिदारी में आधी शक्ति और पैसे का अपव्यय कहां की बुद्धिमानी है ? हमें बाहरवालों से भी तो कुछ सीखना चाहिये । देखो,

---

1- देवयानी का कहना है- रमेश बक्षी पृ0-24

2- पीली दोपहर - जगदीश चतुर्वेदी - पृ0 - 41

विदेशों में अंगूठी की अदला-बदली कर ली, किस्सा खत्म ।"[1]

प्राचीनकाल से ही विवाह के प्रति उत्तम धारणा रही है । इसमें गोत्र बचाने किन्तु एक ही वर्ण में विवाह तय करने का विधान रहा है किन्तु बौद्धिक चेतना तथा पाश्चात्य प्रभाव ने इस धारण पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया । भाई-बहन के पवित्र, मर्यादित व आदर्श रिश्ते को चाहे वे दूर के ही क्यों न हो, विवाह की मान्यता नहीं थी । लेकिन तर्क व पश्चात्य अंधानुकरण ने इस मान्यता को अवैज्ञानिक सिद्ध कर दिया है । "न धर्म न ईमान" (रेवती सरन शर्मा) नाटक में दिनेश, जो अपनी रिश्ते की बहन दया से विवाह करना चाहता, के माध्यम से क्रान्तिकारी विचार उद्घोषित किये हैं -"---"---"फिर अपनी ही जाति और अपने ही धर्म में शादी करने को क्यों कहते हैं ? क्यों नहीं कहते दूसरी जातों, दूसरे धर्मों और दूसरी नस्लों में शादी करने को? ताकि खून ज्यादा से ज्यादा बच सके । नस्ल अच्छी से अच्छी बन सके ।"[2] भारतीय समाज में विवाह नैतिकता व आदर्श के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है लेकिन आधुनिक युग में नारी स्वतंत्रता व स्व-अस्तित्व के भाव ने इस मान्यता को नकार दिया है । "टगर" की नायिका टगर ठाकुर के साथ विधिवत् विवाह नहीं करती फिर भी हृदय की भावना के आधार पर विवाहितों का सा जीवन व्यतीत करती है । "माना कि अभी हमारा बाकायदा विवाह नहीं हुआ है और टगर अभी भी मेरी सेक्रेटरी ही है, लेकिन हृदय का मिलन तो पूर्ण हो चुका है । और विवाह क्या है, दो हृदयों का मिलन । वह नहीं है तो सप्तपदी भी व्यर्थ है ।"[3] "भौतिक चेतना" ने विवाह की सामाजिक

1- अत: किम् - राधा कृष्ण सहाय - पृ0-56

2- न धर्म न ईमान - रेवती सरन शर्मा - पृ0-16

3- टगर - विष्णु प्रभाकर - पृ0 8

सुरक्षा पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। साधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए विवाह गुड्डे -गुड़िया का खेल हो गया है । -"तो मालमत्ता ये कि आज मंदिर में जाकर शादी कर ली और शादी करवाकर यहाँ आ गये । पंडित को सौ रूपये दिये तो उसने दस मिनट में ही निबटा दिया । पटेडिया- लेकिन आत्मा को इससे बड़ी शान्ति मिलती है और ऐसी शादी हर शनिवार को की जा सकती है ।"[1] "कुत्ते" नाटक में भी इसी धारण की पुष्टि की गई है । कपूर भौतिक चेतना से प्रभावित होकर अर्थ व काम को प्रमुखता प्रदान करता है - "यह भी कोई बात है कि जिससे शादी हुई, बस उसी से बँधे रह गये । ----- समय के साथ-साथ सब कुछ बदलते रहना चाहिये ।"[2]

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि आधुनिक शिक्षा, शहरी करण तथा आद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप देश में जातीयता के बंधन शिथिल होने लगे । जिसके प्रभाव से विवाह प्रणाली भी बदलने लगी । वास्तव में नव चेतना वादी स्त्री-पुरूष के मध्य प्रेम विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह एक चुनौती के रूप में उपस्थित हुआ है । व्यक्ति तर्क व वैज्ञानिक आधार पर विवाह के जन्म जन्मान्तर के संबंधों को नकार कर स्वेच्छा से विवाह करता है जिसमें न वर्ण का स्थान है और न ही परिवार की इच्छा-अनिच्छा का । भौतिक वादी युग में विवाह धार्मिक सामाजिक कृत्य न रहकर यौन तुष्टी का मार्ग बन गया है । "जन्म जन्मान्तर के मिलन" और दो " "आत्माओं के पवित्र संयोग" जैसी बातें शारीरिक सुख प्राप्ति के आगे अस्तित्वहीन होती जा रही हैं । युवा पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता की

1- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी - पृ0 103

2- कुत्ते - सुरेश चन्द्र शुक्ल - पृ0 20

अंधानुकरण प्रवृत्ति के कारण विवाह को बेकार का व्यवसाय और बंधन समझ नकार रही है -"शादी - डैम विद दिस शादी बिजनैस क्यों बंधे हम जब वैसे ही एक दूसरे को आसानी से पा सकते हैं ।"[1]

मणि मधुकर कृत "खेला पोलमपुर" में विवाह प्रणाली के बदलते स्वरूप एवं मान्यताओं का वर्णन किया है । नाटक में विधवा स्त्री जड़िया, नितान्त अपरिचित सैनिक से मामूली सी जान-पहचान में वैवाहिक संबंध स्थापित कर लेती है । सिपाही कहता है -" सुनो । मैं मर्द हूं , तुम भरपूर औरत हो । हम दोनों अगर तय कर लें - {कुछ रूक कर} मैं तुम पर कभी हाथ नहीं उठाऊंगा, न पराई औरतों के पास जाऊंगा और तुम्हें औलाद देने मे भी आनाकानी नहीं करूंगा बोलो मेरा साथ तुम्हें मंजूर है ।"[2] और जडिया गहने कपड़े और सैर सपाटे के लालच में तुरन्त उसे गठबंधन कर "सिगडी" के चारों ओर फेरा लगा लेती है । इस प्रकार विवाह के बदलते स्वरूप व मान्यताओं में उसे मृत घोषित किया है । उसकी सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लग रहे हैं -"जब मन्दिर में जाकर पटेडिया और शकुन्तला जैसे लोग माला बदलकर पति-पत्नी बनने लगे हैं, विवाह नाम की संस्था भी मर चुकी है"[3] अत: स्पष्ट है कि नैतिक मूल्यों के विघटन और स्वच्छंद यौन भावना ने विवाह संस्था को प्रभावित किया है । आज विवाह शारीरिक व भौतिक तथा यथार्थ के धरातल पर किये जाते हैं । आध्यात्मिक तथा आदर्श धरातल पर नहीं । नारी भी अपने स्व-अस्तित्व बोध व स्वाभिमान को पहचान कर इस तथ्य की ओर आकर्षित

1- दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ0- 39

2- खेला पोलमपुर - मणि मधुकर - पृ0- 17

3- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी - पृ0-55

होती दृष्टिगोचर हो रही है । सह शिक्षा तथा कार्यालयों में साथ साथ काम करने की प्रवृत्ति ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । "सुनो शेफाली" नाटक की हरिजन नायिका शेफाली वैवाहिक रूढ़ परम्पराओं के प्रति विद्रोह करती है । वह ब्राह्मण युवक के साथ विवाह पूर्व शारीरिक संबंध स्थापित करती है लेकिन बाद में अपने स्वाभिमान का पलड़ा भारी अनुभव कर उससे विवाह नहीं कर पाती [1]।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है आधुनिक नाटककार नई संवेदनाओं धारणाओं एवं मान्यताओं की आधार भूमि पर स्त्री पुरूष के नवीन दृष्टिकोणों व विचारों का अंकन कर रहा है । व्यक्ति का सामाजिक प्रतिबद्धताओं के प्रति विद्रोह ने "विवाह प्रणाली" की नींव में दरार डाल दी है । पुरूष के नवीन चिन्तन में जहां पत्नी को अपने समकक्ष, आर्थिक रूप से निर्भर, सुन्दर, शिक्षित अनिवार्य स्थान दिया है वहीं, नारी ने पति के रूप में अपना सहचर, साथी, मित्र की नवीन व्याख्या की है । विज्ञान तथा पाश्चात्य चिन्तन ने वैवाहिक मर्यादा पवित्रता को नकार दिया है । स्त्री-पुरूष वर्ण, ~~जाति~~ गोत्र आदि के बंधन को तो नकार ही रहा है । साथ ही विवाह पूर्व शारीरिक संबंध स्थापित करना भी अवैध नहीं मानता । इसके वह "एक दूसरे को जानने के लिए" कह कर अनिवार्यता प्रदान करता जा रहा है । इस प्रकार आलोच्य कालीन समाज में विवाह संबंधी धारणाएं व्यक्तिवादी चेतना, भौतिक

1- सुनो शेफाली - डा0 कुसुम कुमार - पृ0- 59

चेतना तथा आर्थिक दबाव से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी । शिक्षित युवा वर्ग पाश्चात्य विचार धारा से प्रभावित होकर प्राचीन परम्परागत मूल्यों आदर्शों, सामाजिक, अवधारणाओं को नकारता हुआ प्राचीन विवाह संस्था पर प्रश्नचिन्ह लगा रहा है । प्रेम-विवाह "व्यावहारिक चेतना" के महत्व को स्वीकार रहा है । इससे एक उज्ज वल पक्ष उभर कर सामने आया कि सुदीर्घ काल से चली आ रही जातिगत भेदभाव धूमिलहोते जा रहे हैं । आधुनिक परिवेश में जातीयता के प्रति नये चिन्तन उभर रहे हैं ।

जातीयता के प्रति नया चिन्तन

जाति व्यवस्था : जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है कि औद्योगिक विकास तथा यातायात के साधनों ने जातीयता के भेदभाव को क्षीण किया । कुछ समय पहले तक जाति व्यवस्था का कठोरता से निर्वाह किया जा रहा था । समाज ऊँच-नीच, सर्वण एवं अछूत आदि वर्णों में विभक्त होने के कारण कई बुराइयों से जकड़ गया था । फलत: देश व समाज के विकास का मार्ग अवरूध हो गया । उच्च वर्ग, निम्न वर्ग को स्पर्श करना तो दूर उसकी परछाई से दूर रहता था । और भयभीत निम्न वर्ग इस अपमान का कोई विरोध नहीं करपाता । कारण सदियों की दासता और दमन । किन्तु संविधान तथा शिक्षा से उत्पन्न नवीन दृष्टिकोण से अभिप्रेरित व्यक्ति छूआछूत को सामाजिक उन्नति एवं विकास में बाधक मान उसे दूर करने का प्रयास करने लगा । आधुनिक परिवेश में शहर से गाँव तक जातीयता की भावना कम होती जा रही है । यहाँ तक कि शहरी जीवन में इसके प्रति विद्वेष की भावना कम होती जा रही है । सभी वर्ण परस्पर कार्य

कार्य कर रहे हैं । नगरीय जीवन की समस्याओं, साथ-साथ काम करने की स्थिति तथा यातायात ने अस्पृश्यता को धूमिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । दूसरी ओर संविधान एवं शिक्षा ने निम्न वर्ग को अपने अधिकारों व अस्तित्व के प्रति जागरूक किया तथा सरकार की आरक्षण नीति ने इस संघर्ष में उसके उत्थान में सहयोग दिया है । यही कारण है कि आज का निम्न वर्ग, अछूत वर्ग अपने स्वाभिमान को पहचान कर उच्च वर्ण से संघर्षरत है । उसमें भय नहीं अपितु साहस एवं दृढ़ता का संचार हो रहा है । अब वह अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलन्द कर रहा है । साठोत्तर हिन्दी नाटकों में इन तथ्यों को उद्घाटित किया गया है । डा० कुसुम कुमार कृत नाटक "सुनो शेफाली" में शेफाली का परिवर्तित दृष्टिकोण समस्त शिक्षित अछूतवर्ग का उद्घोष बन कर उभरा है । शेफाली स्वअस्तित्व की रक्षा के लिए अपने प्रेम को त्याग देती है । वह टूट जाना पसंद करती है किन्तु झुकना नहीं ।"[1]

स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक जीवन व्यापक रूप से आलोड़ित हुआ है । देश में भौतिक-चेतना तथा यथार्थ-चेतना उत्तरोत्तर विकसित हुई । इससे प्रभावित वैयक्तिक-चेतना ने युवा पीढ़ी की मानसिकता को झकझोर दिया । आधुनिक युग का शिक्षित युवा वर्ग जातीयता के सीमित मानदण्डों एवं बन्धनों को तोड़ रहा है । लेकिन पुराने पीढ़ी अभी तक इस भेदभाव को अपनाये हुए है । इस वैचारिक द्वंद्व ने पुरानी पीढ़ी व युवा पीढ़ी के बीच एक लक्ष्मण रेखा खींच दी है । किन्तु यह कह देना समीचीन होगा कि यह रेखा समय परिस्थितियों अनुरूप धूमिल होती जा रही हैं । "वह देश जहाँ

1- सुनो शेफाली - डा० कुसुम कुमार - पृ०- 60

भूख नहीं "[1] और "घर ... की बात"[2] आदि नाटकों में इस तथ्य का चित्रण करते हुए जातिगत भेद-भाव को नकारा गया है ।

डा0 लक्ष्मी नारायण लाल कृत नाटक में "राम की लड़ाई" में राम गुलाम के माध्यम से निम्न जाति में बढ़ते आत्म विश्वास, जागरूकता तथा साहस को अभिव्यक्त किया गया है । रामगुलाम निम्न जाति का युवक है जो "विमला" नाम की ब्राह्मण पुत्री से विवाह रचा लेता है । दोनों जात-पांत के बंधन को तोड़कर मानवता का संदेश देते हैं । समाज में आज इस तरह के वैवाहिक संबंधों को मान्यता दी जा रही है उन्हें सराहा जा रहा है । सरजू के मुख से आज का समाज इस प्रकार के विवाह का अनुमोदन करते हुए कह रहा है -"यह संबंध जाति-बिरादरी से ऊपर का है । यह दैवी संबंध है ।"[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैयक्तिक चेतना ने आज गांवों में भी जातिगत भेदभाव के विरूद्ध स्वरों को उठाया है । "भूमि की ओर" "कपास के फूल" आदि अन्य अनेक नाटकों में जातीय एकता को उभारा गया है ।

समकालीन परिवेश में बढ़ते पाश्चात्य प्रभाव ने भी जातीयता की अवधारणाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाया है । स्वच्छंद यौन वृत्ति तथा उन्मुक्त प्रेम की प्रवृत्ति ने इस दिशा में मुख्य कार्य किया है । "सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" नाटक में विदुर राजपुरोहित दासी के साथ शारीरिक संबंध रखता है । वह कामवृत्ति के आधार पर जातीयता को महत्त्व नहीं देता ।"[4]

1- वह देश जहां भूख नहीं - अज्ञात -पृ० 94-95

2- घर-... की बात - प्रेम नाथ दर -पृ 85-

3- राम की लड़ाई - डा0 लक्ष्मी नारायण लाल - पृ0 34

4- सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य को पहली किरण तक - सुरेन्द्र वर्मा-पृ0-5।

समकालीन परिस्थितियों में निम्न वर्ग चेतनशील हो चुका है । उसमें स्वाभिमान से अभिप्रेरित "वैयक्तिक चेतना" का प्रवाह आरम्भ हो चुका है । "वाह रे इन्सान" का कांति जो निम्न वर्ग का प्रतीक है उच्च वर्ग के प्रतिनिधि धनपतराय से टक्कर लेता है । इसीप्रकार "पहला राजा" नाटक में निम्न जाति का कवष जातीयता की बदलती हुई मान्यताओं तथा निम्न वर्ग में पनप रही "वैयक्तिक चेतना" का प्रतीक है । जो अपने ज्ञान, तर्क व पौरूष के द्वारा आर्य वर्ग का दम्भ भरने वाले ऋषि मुनियों तथा अपने सखा पृथु के अभिमान को परास्त कर देता है ।"[1] इसी प्रकार सत्य प्रकाश सागर कृत "दीप से जले दीप" नाटक गांधीवादी सिद्धान्त के आधार पर सामाजिक संदर्भो में ऊंच-नीच ,छूआछूत की समस्या को नकार कर वर्ण व्यवस्था की नई सीमाओं को उद्घाटित करता है । जातीयता के भेद भाव राष्ट्र विकास में अवरोधक सिद्ध हुए हैं इसलिए सरकार ने कानून तथा आरक्षण पद्धति द्वारा निम्न वर्ग को ऊपर उठाने के प्रयास किये । और इसका उज्ज्वल परिणाम भी निकला । आधुनिक परिवेश में निम्न वर्ग अधिकाधिक जागरूक होता जा रहा है । "दरिन्दे" नाटक में निम्न वर्ग के प्रतीक शेर, भालू, लोमड़ी अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं ----"-----जानवरों के लिए अच्छे और सस्ते मकान बनाये जायें । उन्हें पहनने के लिए कपड़े दिये जायें । भोजन की पर्याप्त व्यवस्था हो ----"[2] और बराबरी का दर्जा पाने का अधिकारी निम्न वर्ग अपने संघर्ष को इन शब्दों में कहता है - बराबरी के लिए

1- पहला राजा - जगदीश चन्द्र माथुर - पृ0- 83-84

2- दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ0-23, नृ0-42

हमारा संघर्ष जारी रहेगा । संघर्ष जारी रहेगा ।"[1] रेवती सरन शर्मा कृत नाटक "अंधेरे का बेटा" में नाटककार ने जातिगत भेदभाव को नकारने का प्रयास किया है । शिक्षित वर्ग के प्रतिनिधि संतोष और उसका पति कैप्टन आनन्द, सिपाही खान की विधवा पत्नी शबनम को अपने साथ घर के सदस्य की भाँति रखते हैं । आज व्यक्ति को जाति के नाम पर बंटवारा करने के विरुद्ध आवाज बुलन्द कर रहा है । मणि मधुकर के "इकतारे की आंख में" कबीर द्वारा इसे स्पष्ट करते हुए कहा है -"अगर कोई आदमी है , तो आदमियत का रास्ता ही जानता होगा । उसे अलग से नाम देना,उसका बंटवारा करना कतई गलत है ।"[2] विनोद रस्तोगी के "नये हाथ" नाटक में महेन्द्र पाल स्पष्ट शब्दों में कहता है -" मैं ऊंच-नीच, जाति-पांति में विश्वास नहीं करता । मेरे लिए सब मुनष्य समान है"[3] समकालीन युग में शिक्षा व विज्ञान ने जन्मगत वर्ण व्यवस्था को खोखला और सारहीन घोषित कर "कर्म" सिद्धांत में विश्वास दिखलाया है । आलोच्यकालीन नाटककार इस वैज्ञानिक तथ्य को आत्मसात कर अपने नाटकों में अभिव्यक्त कर रहे हैं । "रोटी और बेटी" नाटक में नाटककार रमेश मेहता सांस्कृतिक के युग में कर्मयोग सिद्धान्त में आस्था व्यक्त करते हुए नाटक के पात्र के माध्यम से कहते हैं - "अगर जात और कर्तव्य हमारे धर्म की बुनियाद है । आधुनिक परिवेश में बदलते बोध से जाति पांति की दीवारें ढ़ीली हुई हैं । व्यक्ति मानव समानता तथा अस्तित्व बोध तथा भाई चारे के मूल्यों को बौद्धिक स्तर पर स्वीकार

1- दरिन्दे - हमीदुल्ला - पृ0-23 - पृ0-42

2- इक तारे की आंख - मणि मधुकर - पृ0-94

3- नये हाथ - विनोद रस्तोगी - पृ0-113

कर रहा है । किन्तु पुरानी पीढ़ी इस नयी चेतना को आत्मसात् करने में तनिक संकोच का अनुभव कर रही है । वह चाहे-अनचाहे जाति गत मान्यताओं को अपने से चिपकाये हुए है । परिवेशगत उद्भूत नवीन विचारों की अपनाने को उत्सुक पुरानी पीढ़ी संस्कारवश पीछे रह जाती है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समकालीन युग में जातीयता के प्रति सदभाव व मानवता से पूर्ण दृष्टिकोण पनपे हैं । युग के बदलते तेवर और शिक्षा के प्रसार से जागृत युवा पीढ़ी के समक्ष जातिगत सामन्ती व्यवस्था घुटने टेकने को विवश हो गयी है । छूआछूत तथा अस्पृश्यता को सामाजिक बुराई व विकास में बाधक मान उसे दूर करने का प्रयास कर रही है । साथ ही विद्रोह करके पुराने मूल्यों सामाजिक रीति-रिवाजों को खोखला और सारहीन सिद्ध कर रही है । एक ओर वैज्ञानिक आधार तथा तर्क बुद्धि ने सामाजिक, धार्मिक, अंध-विश्वासों, जादू-टोने, झाड़-फूंक, तीर्थों के प्रति अतिरिक्त मोह, पंडे-पुजारियों के चंगुल से मुक्ति दिलायी है तो दूसरी ओर पाश्चात्य अंधानुकरण, भौतिक चेतना ने सामाजिक रीति-रिवाजों, भारतीय आदर्शों, संस्कारों, शिष्टाचार, लोकाचार आदि को आघात पहुंचाया है ।

§5§ टूटते सामाजिक रीति-रिवाज :-

सुदीर्घ काल से भारतीय समाज में रीति-रिवाजों, धार्मिक कृत्यों, व्रत, तीर्थ, देवी-देवता की मान्यता, मोक्षादि की कामना, विवाह संबंधी रीति-रिवाज, जन्म से मृत्युपर्यन्त संस्कार, गंगास्नान

शिष्टाचार तथा लोकाचार आदि का महत्व रहा है । आज भी कुछ सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाजें का इतना ही महत्व है जितना पहले से चला आ रहा है यद्यपि महानगरीय व्यस्त जीवन में इनके प्रति उत्साह में निरन्तर कमी आती जा रही है । भारतीय समाज में - लोकाचार जैसे विवाह के आदि अन्य शुभ कार्यों के अवसर पर मुहूर्त्त देखना, देवी देवता का पूजन, जन्म-मृत्यु पर भोजादि देना, नाम, जनेऊ, कनछेदा, मुण्डन आदि संस्कार कराना, तीर्थ यात्रा करना, गंगास्नान, विवाहादि अवसर पर गीत गाना, रत जगा करना तथा अन्य अनेक रस्में, और शिष्टाचार जैसे नमस्कार, बड़ों का आदर, पैर छूना, उपहार देना, आज्ञा पालन, छोटों को स्नेह, बड़ों के सामने ऊँचे आसन पर न बैठना - आदि मान्य थे । और समाज के सभी वर्ण इनका पालन करते थे । किन्तु आधुनिक व्यस्त जीवन में मशीन बना व्यक्ति इनको "बेकार का झंझट" व फालतू काम कह कर त्यागता जा रहा है । एक ओर आवासीय समस्या, आर्थिक संकट तथा समयाभाव की विवशता ने विवाह तथा अन्य सामाजिक रस्मों, सामूहिक भोज, गीत गवाना, मुहूर्त्त आदि लोक रीतियों को प्रभावित किया है तो दूसरी ओर विज्ञान तथा शिक्षा के आलोक ने धार्मिक अंधविश्वासों, देवी-देवताओं की पूजा, मोक्षादि की भावना, गंगा स्नान ,तीर्थ स्थान की यात्रा, मुहूर्त्त, झाड़-फूंक, जादू टोना आदि मान्यताओं को धराशाही किया है और तीसरी ओर पाश्चात्य प्रभाव, एवं चिन्तन, स्वच्छंदता की भावना, फैशन परस्ती आदि ने बड़ों के प्रति आदरभाव, आज्ञा-पालन शील, पवित्रता

मातृत्व, पातिव्रत्य आदि पर प्रश्नचिन्ह लगा दिये हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् समाज में आधुनिक चिन्तन एवं परिस्थितियों से प्रभावित दो पक्ष स्पष्टत: दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।एक पक्ष व्यावहारिक चेतना से प्रभावित उज्जवल पक्ष है जिसमें भारतीयों को अंधविश्वासों, रूढ़ियों व जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं से मुक्ति की प्रेरणा व बल मिला । या दूसरे शब्दों में कहें तो पुराने मूल्य , रूढियों के बंधन तथा अंधविश्वास आधुनिक भाव बोध के सामने अपमानित अनुभव कर स्वंय तिरोहित होने लगे । आलोच्य कालीन नाटकों में नवीन चेतना से प्रभावित क्रान्तिकारी चिन्तन को व्यापक अभिव्यक्त किया है ।

आधुनिक युग के आर्थिक संकट में व्यक्ति इस तथ्य को पहचान गया है कि अब विवाहादि के अवसर पर बाहरी दिखावे के स्थान पर सादगी बर्तनी चाहिये । प्राचीन रस्म-रिवाज, गाजे-बाजे इस युग की वस्तु नहीं । प्रकाश अपने ग्रामीण साथी दुर्गा को कहता है -"--- असल में दुर्गा, शादी ब्याह , क्रिया-कर्म छठी-तेरहवीं इन सब चीजों में बहने वाले रूपयों को हमें रोकना है ।"[1] विज्ञान व शिक्षा ने व्यक्ति को तार्किक बना दिया है । "न धर्म न ईमान" नाटक में दिनेश नामक पात्र के माध्यम से हिन्दू धर्म के विवाह संबंधी लोक विश्वासों को निरर्थक घोषित किया है । हिन्दू धर्म में एक ही गोत्र, तथा कुछ संबंधों में वैवाहिक रिश्ता नहीं हो सकता । किन्तु दिनेश इस सामाजिक मान्यता को नकारता हुआ कहता है -""मुसलमानों

1- माटी जाग रे - ज्ञानदेव अग्निहोत्री - पृ0- 68

में यह रिवाज है । अंग्रेज़ों में रिवाज है । उनकी नस्ल कमजोर हुई है ?"[1] इसी प्रकार "वाह रे इन्सान" का कान्ति, बौद्धिकता के परिवेश में बदलते रीति-रिवाजों की ओर इंगित करते हुए कहता है -" सम्पत्त -" पत्नी थी । शादी की थी तुमने ? मंगल सूत्र पहनाया था उसको ?"

कान्ति -"तुम्हारा मतलब है बिना मंगल सूत्र पहनाये शादी नहीं होती क्या ?"[2]

शिक्षा का प्रभाव अंधविश्वासों को प्रभावित करता जा रहा है । उसके आलोक में पाप-पुण्य ,भाग्यवाद आदि की भावना अपना अस्तित्व त्यागती जा रही है । प्रो० सुधांशु कहता है -" पूर्व जन्म के पाप । पाप-वाप क्या होता है ? सब फिजूल की बातें हैं । हम अपना भाग्य अपने हाथों ही बनाते हैं ।"[3] नाटक में अन्य स्थान पर वह गंडे ,तावीज,पण्डा-पुजारियों के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हुए कहता है -"------- उन पाखण्डियों के गंडे, ताबीजों से रेखा अच्छी नहीं होगी । उन दरगाह के टुकड़ेखोरों के पास इसे भेजने से तो कुंये में ढकेलना मैं बेहतर समझता हूं । दरगाह के लफंगे पीरों को मैं खूब जानता हूं ।"[4] समकालीन परिवेश में अंधविश्वास ,कुरीतियों , रूढ़ियों, मन्दिरों तथा तीर्थ स्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति जन साधारण सचेत हो गया है । जिन रूढ़ियों ने सामाजिक जीवन को

1- न धर्म न ईमान - रेवती सरन शर्मा - पृ०-15
2- वाह रे इन्सान - रेवती सरन शर्मा - पृ०-33
3- पीली दोपहर - जगदीश चतुर्वेदी - पृ०-10
4- ,, ,, ,, - पृ०-16-17

आक्रान्त दिया था उन पाखण्डपूर्ण मान्यताओं तथा रीति-रिवाज़ों की अब आलोचना होने लगी है । भूत-प्रेत, जादू-टोना आदि कुरीतियों की भर्त्सना करके उन्हें समाज से दूर करना अनिवार्य हो गया है । और स्वस्थ चिन्तन के परिपेक्ष्य में स्वंय भी तिरोहित होती जा रही हैं । राजेन्द्र शर्मा कृत "काया कल्प" नाटक में पण्डितों, पुजारियों तथा अंधविश्वासों को प्रश्रय देने वाले धर्म के ठेकेदारों पर व्यंग्य किया गया है। साथ ही उनकी स्वार्थ वृत्ति पर कुठाराघात किया है ।इसी प्रकार सर्वेश्वर दयाल सक्सैना ने "बकरी" नाटक के माध्यम से अशिक्षित, धर्मभीरू, अंधविश्वासी ग्रामीण जनता को पाखण्डियों के अत्याचार के विरूद्ध सचेत करने का प्रयास किया है । आधुनिक वैज्ञानिक परिवेश में व्यक्ति अधिकाधिक बौद्धिक होता जा रहा है । वह परम्पराओं, रीति-रिवाजों को भावना अथवा परम्परा के आधार पर नहीं अपितु तर्क के आधार पर परख रहा है । रेवती सरन शर्मा के नाटक "दीप शिखा" नाटक में हिन्दू मुस्लिम धर्म की कुरीतियों पर कुठाराघात किया है और परस्पर एकता स्थापित करने पर बल दिया है। भीष्म साहनी कृत "कबिरा खड़ा बाजार" में भी हिन्दू मुस्लिम धर्म के कुकृत्यों का पर्दाफाश किया है । इस प्रकार शिक्षा, विज्ञान, आधुनिक चिन्तन तथा पाश्चात्य प्रभाव का उज्ज्वल परिणाम है जिस में जन साधारण में "व्यावहारिक चेतना" का प्रचार-प्रसार करके कुप्रथाओं -कुरीतियों के प्रति विद्रोहात्मक रूप को जागृत किया है । सामाजिक विद्रोह की यह प्रक्रिया सन् 1947 अर्थात् स्वतंत्र भारत में तेज़ी से गुजरने लगी । उक्त नाटकों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता

है कि स्वतंत्रता के बाद भारत के सामाजिक जीवन, धार्मिक जीवन विषक आदर्शों एवं मूल्यों में व्यापक परिवर्तन आया है । पहले पाप-पुण्य ,स्वर्ग-नरक जैसी मान्यताओं तथा धार्मिक विश्वासों से समाज संचालित होता था लेकिन आधुनिक काल में इनके प्रति आस्था में परिवर्तन के कारण उक्त दिशा में नूतन प्रगति शील मूल्यों की स्थापना होने लगी है । यद्यपि मूल्य स्थापन की यह प्रक्रिया मद है । किन्तु इसी पक्ष का दूसरा पहलू है जो सामाजिक ,धार्मिक एवं नैतिक स्वस्थ एवं प्रगतिशील मूल्यों को प्रभावित कर रहा है । पाश्चात्य चिन्तन एवं सभ्यता से हमने प्रगतिशील तत्व तो कम ग्रहण किये हैं, लेकिन अंधानुकरणीय प्रवृत्ति के कारण "नेति-नेति ?"। कहना अवश्य सीख लिया है । अपने देश, काल, परम्परा तथा संस्कृति को भुलाकर पाश्चात्य तत्वों को अपनाने में गौरव और प्रगतिशीलता समझी है जो प्रत्येक क्षेत्र में उचित नहीं है । पाश्चात्य चिन्तन एवं सभ्यता से प्रभावित "भौतिक चेतना" ने स्त्री-पुरूष के चिन्तन एवं आचरण में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया है । 'उत्तर-उर्वशी,' 'देवयानी का कहना है,' 'वामाचार,' 'सुनो शेफाली,' 'तेन्दुआ,' 'व्यक्तिगत,' 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक,' 'चार यारों की यार' आदि नाटक हैं जिनमें सामाजिक मर्यादाओं एवं नैतिक मान्यताओं को बंधन समझकर तोड़ा जा रहा है । विगत दो दशकों में "वैयक्तिक स्वतंत्रता " तथा "अस्तित्व रक्षा" के नाम पर परिवार और समाज मूल्यहीनता का जीवन जी रहा है । दया, श्रद्धा, प्रेम, परोपकार, आदर, शील, पवित्रता ,त्याग ,ईमानदारी जैसी भावनायें अपना अस्तित्व त्यागती जा रही हैं । भारतीय संस्कार विवाह प्रणाली

और आदर्श महज ढकोलना मात्र माने जाने लगे हैं । देवयानी तो विवाह को केवल यौन तुष्टि हेतु "सामाजिक पास" मानती है ।"[1] वह सामाजिक रीति-रिवाजों, नैतिकताओं को बौद्धिकता के धरातल पर नकारती है । सुरेन्द्र वर्मा कृत सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" की नायिका शीलवती "भौतिक चेतना" के आधार पर दाम्पत्य जीवन उसकी मर्यादा, सामाजिक ,लोकाचार, शिष्टाचार आदि को शारीरिक काम वासना के आधार पर नकारती है - "निभायी है मैंने ---- और पाँच वर्ष तक मर्यादा निभाने में उतना संतोष नहीं मिला, जितनी तृप्ति इस एक रात में मिली है । --- बोलो -- किसे मानूं ? ---- किसको दूं महत्व ?"[2] शीलवती वैवाहिक मर्यादा के साथ-साथ "मातृत्व" की मान्यता को भी "गौण उत्पादन"[3] कहकर उपेक्षा करती है । "सूर्यमुख" नाटक में भारतीय परम्परा का उल्लंघन कर प्रद्युम्न का विमाता वेनुरति प्रेम प्रसंग चित्रित किया है । यद्यपि नाटककार ने "जन्म जन्मान्तर का संबंध"[4] कहकर सामाजिक मान्यता दिलाने का प्रयास किया है । आधुनिक युग में बदलती मान्यताओं ने पति-पत्नी के बीच मर्यादा, परम्पराओं व चिन्तन को बदला है । पाश्चात्य प्रभाव, स्वच्छदंता तथा आर्थिक निर्भरता ने उसकी स्वतंत्रता को अत्याधिक बढ़ावा दिया है। "सादर आपका" की नायिका लज्जावती पति की उपेक्षा कर नित नये पुरूषों से सम्पर्क स्थापित करती है तो "आधे-अधूरे" की सावित्री पति को छोड़कर अपने प्रेमी के पास चली जाती है किन्तु प्रेमी द्वारा न अपनाये जाने पर घर वापिस आ जातीहै । सावित्री की बेटी बिन्नी अपने माँ के प्रेमी के साथ भाग जाती है । इस प्रकार इन नाटकों में पारिवारिक

1-देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी - पृ0-23
2-सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक-सुरेन्द्र वर्मा - पृ0-49
3- " " " " पृ0-52
4- सूर्य मुख - डा0 लक्ष्मी नारायण लाल -पृ0-64

मर्यादा नाते-रिश्ते एवं संबंधों की परम्परा को नकारा गया है । "एक और अजनबी" की "शानी" प्रेम को हवस मानती है -"प्यार ? प्यार एक हवस है, जो क्षण भर में शान्त हो जाती है ।"[1] आधुनिक नारी अंग्रेज़ी सभ्यता के आधार पर स्वच्छंदता को महत्व दे रही है। और भारतीय आदर्श लोक मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लगा रही है । "दरिन्दे" नाटक में रति कहती है -"तुम कुल वधु हो सकती हो । मैं उन स्त्रियों में नहीं हूं जो अपने शरीर को फीडिंग बॉटल बना देती हैं ।"[2] उत्तर उर्वशी में अर्थ, काम, मोक्ष की आधुनिक संदर्भ में व्याख्या की है । इनकी सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए बिखरते आदर्शों मर्यादाओं का चित्रण किया है ।

समकालीन मूल्यहीनता के परिवेश में व्यक्ति "भौतिक चेतना" के आधार पर अपनी स्वार्थवृत्ति हेतु मानवीय मूल्यों को खोखला घोषित कर रहा है । मि० कपूर -"..... अब पुरानी परम्परायें टूटनी चाहिये । यह भी कोई बात है कि जिससे शादी हुई, बस उसी से बंधे रह गये । ---- समय के साथ साथ सब कुछ बदलते रहना चाहिये ।"[3] नाटक में मि० कपूर कहता है -".... मानव मूल्य । घिसे हुए सिक्के । जो अब नहीं चलते ।"[4] छोटे सैयद बड़े सैयद , नाटक में धार्मिक सामाजिक कुप्रथाओं, लोक-रीतियों आदि पर प्रश्न चिन्ह लगाया है ।पृथ्वी नाथ कृत "मॉडर्न लाइफ" नाटक में उच्च वर्गीय समाज में टूटते रीति-रिवाजें, विश्वासों आदि का वर्णन किया

1-नटरंग (अंक एक और अजनबी) - मृदुला गर्ग - पृ०-4
2-दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ०-33
3- कुत्ते - सुरेश चन्द्र शुक्ल चंद्र - पृ०-20
4- ,, ,, ,, ,, पृ०-21

है । नाटक में भारतीय संस्कृति सभ्यता, लोक रीतियों आदि को अवैज्ञानिक सिद्ध करके पाश्चात्य सभ्यता और उसकी ड्रिंग्स,डिनर, डांस, युक्त संस्कृति अपनाने पर बल दिया है । "तेन्दुआ" नाटक भी उच्च वर्ग में तिरोहित होते दया, सहानुभूति, प्रेम जैसे शाश्वत् तत्वों की स्थिति का चित्रण करता है । रनु राय "ओ इट वाज एन एक्सपीरियेन्स ---- मैंने ब्लैक ब्रीचेज के साथ काली लेदर जर्किन पहनी थी और स्पेनिश जूते ---- कोड़े के साथ वह ऐसा कांपता था जैसे किसी सैक में बहुत सी खूबसूरत मछलियां भरी हों और वे नाच रही हों -- फिर तो मैं कोडे लगाती ही चली गयी --- इस कदर पसीना छूटा कि मैं जैकिट उतारने लगी --- वहक्मिक ही गई । बट यू नो - दीज़ पीपुल आर हार्ड हार्डस । मेरा ख्याल है शायद दो सौ स्ट्रोक्स के बाद ही कराहा होगा ।"[1]

अर्थ प्राप्ति हेतु व्यक्ति नैतिक मान्यताओं व परम्पराओं को नकार रहा है । अर्थ के लालच में अपनी पत्नी तक का सौदा करना उसे अनैतिक प्रतीत नहीं होता । धन सेवक पैसे को लोभ में पाप पुण्य की अपने अनुरूप व्याख्या करते हुए कहता है -" हम लोग पाप-पुण्य के फेर में पड़कर अपना ही गला घोंटे जा रहे हैं । "[2]

आलोच्य नाटकों में परिवर्तित मर्यादाओं एवं मूल्यों के संदर्भ में एक तथ्य उभर कर सामने आया है कि समाज में हो रहे परिवर्तन चाहे वह उज्ज्वल हो या दिशाहीन उसमें युवा पीढ़ी का विशेष हाथ है । पुरानी पीढ़ी यद्यपि सामाजिक बुराइयों रूढ़ परम्पराओं से

1- तेन्दुआ - मुद्राराक्षस - पृ0- 59

2वाह रे इन्सान - रेवती सरन शर्मा - पृ0 56

मुक्ति चाहते हुए भी संस्कार वश मुक्त नहीं हो पाती किन्तु युवा पीढ़ी उनको अनुपयोगी कह कर त्यागने में संकोच नहीं करती । यहां तक कि शाश्वत् मूल्यों भारतीय संस्कारों, आदर्शों को भी खोखला, व्यर्थ घोषित कर रही है । पाश्चात्य अंधानुकरण ,तथा चिन्तन के परिणामस्वरूप वह पुराने मूल्यों व परम्पराओं को तोड़ रहा है । शिष्टाचार तथा बड़ों की आज्ञा पालन को स्वाभिमान के विरूद्ध मान रहा है । इंगलैंड से लौटकर आया श्याम कहता है-"हमारे इंगलैंड में को लड़का अपने बाप के पैर नहीं छूता । यह सब कंजरवेटिज्म है । आदमी को वक्त के साथ बदलना चाहिये ।"[1] किन्तु जब इसकी सन्तान पश्चिमी रंग ढंग से ढल जाती है तो उससे बर्दाश्त नहीं होता। समीर अपनी मां की इज्ज़त न करते हुए सिगरेट पीता है - {अचानक सिगरेटछीनती हुई}नालायक । बड़ी काबलियत झाड़ने चला है । मां के सामने ही तम्बाकू पी रहा है ।

समीर - पुरानी बातें ।"[2]

समीर मां द्वारा रोक टोक करने पर क्रोध से भर जाता है - " {नकल करते हुए} कहीं ऐसा पहना जाता है । ऐसा नहीं होता क्यों कि कोई ऐसा नहीं करता । जो सब करते हैं वही हमें करना चाहिये । {स्वर बदलकर} मैं पूछता हूं यह जिन्दगी मेरी है या किसी और की ?"[3] इसीप्रकार "दरिन्दे" में बुढ़िया अपने पुत्र के विषय में कहती है -"का ? हे भगवान, कइस कलजुग आय गवा है ? बेटा बाप से सिगरेट मांग के पिये लाग है ।हमार तो कुछ समझ में नहीं आवत"[4] "तीसरा हाथी"

1- ओह अमेरिका - दया प्रकाश सिन्हा - पृ0- 81

2- ,, ,, ,, ,, ,, -पृ0-95

3- ,, ,, ,, ,, ,, पृ0-96

4- दरिन्दे - हमीदुल्लाह पृ0 -9

नाटक में भी सन्तान द्वारा तानाशाह पिता के प्रति उपेक्षा व्यक्त की गयी है । आधुनिक युग का युवा वर्ग आँख मूंद कर माता-पिता तथा अन्य गुरूजनों की आज्ञा पालन नहीं कर सकता । विभा-"आती है शर्म कि एक सिरे से हम सब इस भारी चट्टान के नीचे दबे हुए हैं और कोशिश ही नहीं कर रहे कि इस दबावमेंसे बाहर आयें ।"।

इस प्रकार युवा पीढ़ी अपने कार्यों को व्यक्तिगत कहकर उस में माता-पिता का हस्तक्षेप भी सहन नहीं कर सकती । "घरौंदा" नाटक केवल एक व्यक्ति के नहीं अपितु समस्त मध्यवर्गीय समाज की बोझ स्वरूपा नैतिकता को उद्घाटित करता है । मंहगाई व बेरोज़गारी के कारण टूटती नैतिकता, धर्म, इश्वरीय मान्यता व संस्कारों का चित्रण अत: किम् नाटक में दृष्टिगोचर होता है । "..... मैं तो कहता हूं कि ईमानदारीसच्चाई किस समाज में फली है ? सोचकर देखो,सोचकर/ झूठे संस्कारों ने हमको तुमको जड़ बना दिया है - जड़ ।"[2]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आज के मूल्य संक्रमण काल में हमारे रीति-रिवाज, आदर्श लोक रीतियां, मान्यताएं शिष्टाचार, संस्कार आदि नये चिन्तन एवं दृष्टिकोणों से सम्पृक्त होते जा रहे हैं । कुछ प्रथाओं एवं रीतियों में जहां युगानुरूप परिवर्तन आया है ,वहीं जीर्ण शीर्ण कुरीतियां व कुप्रथाएं अपने को अस्तित्व हीन मानकर स्वंय तिरोहित होती जा रहीहैं । प्राचीन काल में जिन धर्माचार्यो को समाज का रक्षक मानकर पूजा जाता था और जिनके बंधनों द्वारा समाज वेगहीन सड़ांध तालाब की भांति हो गया था आज वैज्ञानिक युग व शिक्षा के परिवेश में कुकृत्यों अंध

1- तीसरा हाथी - रमेश बक्षी - पृ0-32

2- अत: किम् - राधा कृष्ण सहाय - पृ0-70

विश्वासों का पर्दाफाश होता जा रहा है और जन-साधारण जागृत हो रहा है । किन्तु दूसरी ओर "भौतिक अर्थ प्रधान चेतना, पश्चिमी प्रभाव तथा अंधानुकरणीय प्रवृत्तियों ने पारिवारिक सामाजिक मूल्यों, आदर्शों तथा नैतिकता को प्रभावित कर युवा पीढ़ी को दिक् भ्रान्त कर दिया है । आधुनिक युवा पीढ़ी मूल्य भंजक तो बन दी गई है । किन्तु उनके स्थान पर नवीन मूल्यों का सृजन नहीं कर पा रही है । परिणामत: समाज में मूल्य हीनता व्याप्त हो रही है । यद्यपि नाटक कार श्री रमेश बक्षी इस प्रक्रिया को सुखद और अनिवार्य मानते हैं। क्योंकि कुछ भी नया सृजन होने से पहले पुराने को टूटना ही पड़ता है ।"[1] अपने इसी तथ्य को "तीसरा हाथी" नाटक के अंत में "हाथी" पर पड़ती चोटों के माध्यम से उद्घाटित भी करते हैं । जबकि डा० लाल इसे मूल्यहीनता की नहीं अपितु क्षणिक वेग भी स्थिति मानते हैं जिसके गुजर जाने पर शाश्वत् मूल्य फिर वैसे ही बने रहेंगे जैसे थे ।[2] किन्तु कुछ सामाजिक बन्धनों को करफ्यू की संज्ञा देते हुए उन्हें हटाना अनिवार्य समझते हैं । जिससे व्यक्ति मुक्त हो सहज स्वतंत्र चिन्तन और आचरण कर सके जैसे - करफ्यू नाटक की नायिका मीनाक्षी ।[3] इस प्रकार निस्संदेह साठोत्तरी नाटक अपने पुराने कथानकों, चरित्रों तथा कथावस्तु आदि के आधार पर नवीनता का कलेवर ग्रहण कर युग सापेक्ष चित्रण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

1- श्री रमेश बक्षी - एक भेंट वार्त्ता के दौरान

2- डा० लाल ,, ,, ,,

3- डा० लाल - भेंट वार्त्ता में "करफ्यू" नाटक पर बहस के दौरान

निष्कर्ष :-

इस अध्याय के पूर्ण विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में तीव्र होती वैयक्तिक-चेतना ने पारिवारिक धरातल को भी अछूता नहीं रखा । व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा स्वेच्छा की भावना ने संयुक्त परिवार की परम्परा को विघटित तो किया ही साथ ही पति पत्नी व सन्तान से बने लघु परिवारों को भी अपनी चपेट में लिया । सम-सामयिक परिवेश में अमर बेल की तरह दिनों दिन फैलती शिक्षा व वैज्ञानिकता ने नारी को सर्वाधिक प्रभावित किया है । भारतीय पुरूष प्रधान समाज में पुरूष का अस्तित्व तो हमेशा से स्वीकारा गया है लेकिन नारी समाज में अपना सम्मान पूर्वक स्थान बनाने व उसे नये विचार देने में संलग्न है । नारी की इस वैचारिकता ने दाम्पत्य जीवन व पारिवारिक जीवन को हिला दिया है । आज नारी स्वाभिमान की रक्षा हेतु पत्नीत्व और मातृत्व की लक्ष्मण रेखा को लांघ रही है । अपनी पहचान स्वंय बन रही है । "बिना दीवारों के घर" कीशोभा और मीना, "आधे-अधूरे" की सावित्री, "टगर" की नायिका टगर, " एक और अजनबी " की शानी ऐसी ही जागरूक नारियां हैं जो प्राचीन परम्पराओं की वेदी में स्वंय को हवन नहीं होने देना चाहती हैं ।

भारतीय समाज में निरंतर विकसित होती पश्चिमी सभ्यता व चिन्तन स्वच्छंद यौन वृत्ति को बढ़ावा दिया । इसने भी पारिवारिक संबंधों व मूल्यों में विघटनकारी तत्व उपस्थित कर दिये हैं । "द्रौपदी" "सादर आपका" "ओह अमेरिका" तिलचट्टा "देवयानी का कहना है","एक और अजनबी" सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की

पहली किरण तक , नरमेध, आदि नाटक इस तथ्य की पुष्टि करने में समर्थ सिद्ध होते हैं ।

आधुनिक स्वच्छंद यौन वृत्ति ने विवाह व अन्य भारतीय संस्कारों के प्रति प्रश्नचिन्ह लगा दिये हैं । विवाह अब जन्म जन्मांतरों के संबंध का ठेका लेने वाला धार्मिक कृत्य नहीं रह गया है ,अपितु शारीरिक भूख को शान्त करने वाला मात्र समझौता बन गया है । इस प्रवृत्ति ने जातिगत परम्परा से चले आ रहे प्रतिमानों को शिथिल कर दिया है । आज विवाह जाति व गोत्र के आधार पर नहीं बल्कि प्रेम और विश्वास के आधार की भाव भूमि पर खड़े हैं।

इन समस्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त व्यक्ति तथा परिवार को राजनैतिक एवं आर्थिक परिवेश ने भी अत्यधिक प्रभावित किया है । जिसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जायेगा ।

-:::::--